Swar Sindhu: National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music
ISSN 2320–7175 | Volume 09, Issue 02, July-December 2021
http://swarsindhu-pratibha-spandan-org
© The Author(s) 2021
A UGC CARE listed Journal

भारतीय लोक संगीत का ऐतिहासिक पक्ष तथा परम्परा

DR. CHANDAN VISHWAKARMA

Assistant Professor, Department of Instrumental Music, Faculty of Performing Arts, Banaras Hindu University, Varanasi

सार

लोक संगीत हमारे जीवन का एक बहुत बड़ा हिस्सा हैं क्योंकि जब से हमारे पैदा होने से बड़े होने तक लोक संगीत की धुने हमारे कान में हमेशा ही सुनायी देती रहती है। जिससे उस व्यक्ति का सुन-सुनकर संस्कार बन जाता है और हमेशा ही उसके मुखर बिन्दु से वहीं लोक संगीत की धुन सुनने को मिलेगी। लोक संगीत के स्वर सुखद अनुभूतिदायक होते हैं। मानव ध्वनि के विन्यास पर आधारित ध्वनि की मधुरता से भावनात्मक अनुभव और संवेदनशील विचारों को अभिव्यंजना को प्रकट करना लोक संगीत की मुख्य प्रवृत्ति है। लोक संगीत, लोक रंजन एवं जन साधारण के आंतरिक भावनाओं का प्रतीक है। सरल भाषा, सरल काव्या और सरल धुनों से आबद्ध इस संगीत में किसी व्याकरण अथवा शास्त्र के नियंत्रन की आवश्यकता नहीं होती है वरन यहां प्रकृतिक वं स्वाभाविक रूप से स्वयं प्रस्फुटित होती है। लोक संगीत की स्वर रचना में किसी रोग विशेष के सांगीतिक योजना गमक स्वर विन्यास आदि का बंधन नहीं होता है तदापि राग की सभी आत्मिक दैहिक स्वरुप लोक संगीत में स्वतः स्फुटित होते हैं।

प्रविधि - प्रस्तुत लेख को तैयार करने में सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है. लेख में प्राथमिक आंकड़ों का प्रयोग किया गया है, द्वितीयक आंकड़े पुस्तकों आदि से एकत्र किये गए हैं।

मुख्य शब्द: भारतीय लोक संगीत, संगीत परम्परा

भूमिका

प्राकृतिक संगीत ही लोक संगीत की परिभाषा है। मानव जब असभ्य था तब वह अपने उद्गारों को प्रकट करने के लिए वाणी द्वारा कुछ स्पष्ट शब्दों का उच्चारण करता था। उस समय वही वाणी उसकी कविता और वही स्पष्ट शब्द अथवा ध्वनि युक्त स्फूरत उसका संगीत होता था।

मानव स्वभाव से ही दूसरों के सम्मुख अपने आन्तरिक उद्गारों को प्रकट करने के लिए वाणी का प्रयोग करता है। कभी-कभी वाणी और सकल दोनो के माध्यम को काम में लाता है। यह उसकी प्रवृत्ति है और प्रवृत्ति का मानव प्रकृति के साथ जो घना सम्बन्ध रहता है उसे कोई भी इन्कार नहीं कर सकता है। भावपूर्ण रचना ही मन को सहज रूप से आकर्षित कर लेती है। इसलिए जब संगीत भाव प्रधान होता है तो शास्त्रीय संगीत का किंचित मात्र में ज्ञान न रखने वाला व्यक्ति भी रस विभोर हो उठता है।

लोक शब्द संस्कृति में लोक दर्शन धातु से ध´ प्रत्यय लगाने से निष्पन्न होता है। इस धातु का अर्थ है देखना तथा इसका एक अन्य पुरुष एक वचन रूप होगा। अतः लोक शब्द का अर्थ है देखने वाला अर्थात् वह समस्त जनसमुदाय जो इसे देखने के कार्य करता है वह लोक कहलाता है।

'संगीत पारिजात' तथा 'संगीत रत्नाकर' आदि सर्वमान्य संदर्भ ग्रन्थों में ऐसे अनेक वाद्यों का वर्णन मिलता है, जो हमारे लोक संगीत के वाद्यों से साम्य रखते हैं। परवर्ती विद्वानों ने भी इन तथ्यों का उल्लेख स्थान-स्थान पर किया है।

Swar Sindhu: National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music
ISSN 2320–7175 | Volume 09, Issue 02, July-December 2021
http://swarsindhu-pratibha-spandan-org
© The Author(s) 2021
A UGC CARE listed Journal

भारतीय शास्त्रोक्त परम्परा में ऋग्वेद में लोक समाज' एक विराट कामना की गई थी। ऋग्वेद में 2 स्थानों के लिए देहितालोकम का प्रयोग मिलता है। अथर्ववेद और ऋग्वेद में दिव्य और पार्थिव इन अर्थों में लोक शब्द व्यवहारित हुआ है।

ऋग्वेद में सुप्रसिद्ध सूक्त में लोक शब्द का व्यवहार जीव और स्थान दोनों अर्थ में किया गया है-

नाभ्यां आसीदंतरिक्ष शीष्णों समवर्तत।

पद्भ्यां भूमिर्दिप्रोत्रातथा लोकांअकल्पयन।।

लोक संगीत लोक और संगीत इन दो शब्दों के संयोग से बना है। लोक शब्द का अर्थ जनसाधारण और संगीत गायन वादन नृत्य का विस्तृत रूप है अर्थात् जो संगीतजन साधारण द्वारा गाया या बजाया जाय वह लोक संगीत कहलाता है। लोक संगीत जन जीवन की उल्लासमयी अभिव्यक्ति है।

डॉ. लालमणि मिश्र के अनुसार लोक संगीत की दो धाराएँ, एक धुन की तथा दूसरी वाद्यों की होती है। यथा-

'लोक संगीत' की दो धाराएँ हैं। एक धुन की तथा दूसरी उनके वाद्यों की लोक संगीत में वाद्यों का महत्व शास्त्रीय संगीत की अपेक्षा बहुत अधिक होता है। विशेष रूप से ताल वाद्यों का, जिनके अन्तरगत घन तथा अवनद्ध वर्गो के वाद्य आते हैं, चाहे लोकगीत हो अथवा लोक नृत्य, वाद्यों की आवश्यकता दोनों के लिए समान होती है। लोक गीतों एक लोक नृत्यों में प्राण डालने वाले वाद्य ही होते हैं, जिनके बिना उक्त दोनों निष्प्राण प्रतीत होते हैं।

लोक संगीत के स्वर रचना में किसी राग विशेष, स्वर वैचित्र या गमक आदि का पूर्व निर्धारित बन्धन नहीं होता हैलेकिन फिर भी वह सांगीतिक तत्व इन लोक गीतों में स्वाभाविक रूप से निहित रहते हैं। लोकगीत उन लोगों के जीवन कीअनायास प्रवाहत्मकता की अभिव्यक्ति है जो सुसंस्कृत एवं सुसभ्य प्रवाहों से बाहर रहकर कम या अधिक रूप में आदिम अवस्था में निवास करते हैं।

जब हम सांस्कृतिक एवं सांगीतिक सन्दर्भ में लोक शब्द प्रस्तुत करते हैं तो एक विशिष्ट स्थान के जन समुदाय की ओर संकेत करता है, यह शब्द, प्रदेश, जन समूह, नैसर्गिक एवं सहज अनुभूतियों से सम्बद्ध माना जाता है। यह तर्क वैज्ञानिकता पर आधारित न होकर अनुभव जन्म होता है।

पाश्चात्य और भारतीय लोक अवधारणा को प्रो० प्रेमलता शर्मा के शब्दों में स्पष्ट करना यथोचित लगता है। ''आज हम समझते हैं कि लोक का मतलब पाश्चात्य फोक (थ्वसा) ऐसी बात नहीं है। फोक का अनुवाद हमने लोक जरूर कर लिया है लेकिन हमारा जो लोक है वह फोक का पर्याय नहीं है, लोक का मतलब है पूरा जीवन। देखिए एक ओर लोक है तो दूसरी ओर वेद, वेद दो एक विशिष्ट प्रकार का वाग व्यवहार हो गया न तो उसको वेद कह दिया। इससे भिन्न पूरा जीवन है उसको लोक कहा गया। जो फार्मूले की नॉलेज है उसको शास्त्र कह दिया। शास्त्र और लोक, वेद और लोक, इस तरह से लोक तो जीवन की ऐसी समग्रता है जो किसी घेरे में बंधन गयी हो। घेरे में बंध गयी है तो उसका अलग नाम (शास्त्र), हो जाता है। फोक का मतलब हम आज समझते हैं गांव का ट्राइव का आदमी। हमारी सभ्यता से जो दूर है वो जो कुछ करता है वह फोक है, ऐसा बात नहीं है।''

Swar Sindhu: National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music
ISSN 2320–7175 | Volume 09, Issue 02, July-December 2021
http://swarsindhu-pratibha-spandan-org
© The Author(s) 2021
A UGC CARE listed Journal

पं0 ओमकारनाथ ठाकुर के अनुसार, देशी संगीत के विकास की पृष्ठभूमि लोक संगीत है। चेम्बर शब्दकोश के अनुसार ''ऐसा कोई भी संगीत जिसका उद्गम लोक में हो और जो परम्परागत रूप में पश्चाद्वर्तियों को मिला हो'' लोक संगीत कहलाता है।

संगीत रत्नाकर में वाग्येकार के गुणों में देशी संगीत का ज्ञान होना स्वीकार किया गया है। संगीतराज, संगीतसमयसार, संगीतोपनिषद, सारोद्धार एवं प्राप्य प्राचीन काल से 19वीं शताब्दी तक से सभी सांगीतिक ग्रन्थों के लोक संगीत के महत्व को स्वीकार किया गया है। ऋग्वेद में कहा गया है कि खुले आकाश के नीचे नृत्य करते हुए लोगों के पदों के धूल से आकाश आच्छादित हो जाता है। यजुर्वेद में शैलूप और यांस पर चढ़कर नृत्य करने वालों नटों की चर्चा की गयी है यज्ञवेदी के चारों ओर स्त्रियों द्वारा मण्डलाकार में नृत्य करना वैदिक काल में अत्यन्त शुभ माना जाता था। महाभारत, वाल्मीकि रामायण आदि प्राचीन ग्रन्थों में लोक नर्तक का उल्लेख प्राप्त होता है। वाद्य की गुफाओं में दण्ड राक्षस जैसे लोक नृत्य का चित्र आज भी उपलब्ध है।

कुमार गन्धर्व ने लोक संगीत की विशेषताएँ इस प्रकार की है- लोक भाषा के गीत, सरल एवं भावपूर्ण होते हैं। लोक धुनें लयबद्ध होती है, अधिकांश लय सरल होती है। कुछ धुनें निश्चित होती हैं और वे स्वाभाविक प्रतीत होती हैं। स्वर-रचना, भावानुकूल, प्रसंगानुकूल होती है। एक ही धुन के अनेक गीत होते हैं, जो लय तथा गीत के बोलों के परिवर्तन द्वारा भिन्न होते हैं।

लोक संगीतज्ञ कोई भी प्रकार के बन्धन को स्वीकार नहीं करता है। वह किसी रूढ़ी को नहीं मानता है और इसका गायन पूर्ण रूप से स्वान्तःसुखाय' होता है। उसके गायन की किसी बाह्य आडम्बर की आवश्यकता नहीं। आटे की चक्की घरघराहट ग्रामीण महिलाओं के कोकिल कंठ के साथ मिलकर वाद्य का रूप धारण कर लेती है, देकली चलाने वाली पानी की सरसराहट और छप-छप की ताल पर ही गा उठता है, गाड़ी हैंकाने वाला व्यक्ति बैल की घण्टीयों और खुरों के आवाज के साथ ही अपना स्वर मिला लेता है। धोबी कपड़े की फटफट से और बर्तन मांजन वाली स्त्री बर्तन की खनखाहट को ही अपने गीतकर माध्यम बना लेती है, लोक संगीत की स्वर रचना भी बहुत सरल और स्वाभाविक होती है एवं स्वर शब्दों से पूर्ण मेल खाते है। वही शास्त्रीय संगीत कठिन से कठिन लयकारी दिखाने में ही अपनी सफल समझता है पर लोक संगीत के रोम-रोम में ही संगीत भरा रहता है, अपने संगीत में वह इतना तन्मय हो जाता है कि उसका भयंकर और विकट प्रयोगों को करने की ओर ध्यान ही नहीं जाता है। यह बात नहीं कि लोकगीत में स्वर पैतत्र्य नहीं रहता। कभी-कभी गायक बहुत सुन्दर खटके और लयों का प्रयोग कर जाते हैं पर ये स्वतः निकल आते हैं, प्रयत्न साध्य नहीं होते।

लोक संगीत में नौ रसों का सुन्दर और हृदयाकर्षण चित्रण मिलता है। शास्त्रीय संगीत के ध्रुवपद गायन शैली में भी अनेक रसों का श्रृंगार, वीर, रौद्र, भयानक तथा शान्त आदि का चित्रण होता था पर ख्याल गायकी में तो केवल श्रृंगार ही शेष रहा है। वैसे लोक संगीत भी परम्परागत संगीत है परन्तु इसमें शास्त्रीय नियम नहीं है। इसमें बुद्धि-तत्त्व का महत्व भी क्षीण है। इस संगीत को कोई भी सुनकर गा-बजा सकता है। इसलिए इसमें कोई विशेष गुरु शिष्य परम्परा नहीं है। इसमें केवल परम्परा ही सम्मिलित है। नवीनता से बहुत दूर है। इसलिए इसमें शास्त्रीय संगीत की तरह घरानों की तरह मान्यता भी नहीं है।

Swar Sindhu: National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music
ISSN 2320–7175 | Volume 09, Issue 02, July-December 2021
http://swarsindhu-pratibha-spandan-org
© The Author(s) 2021
A UGC CARE listed Journal

लोक संगीत यों तो मनोरंजन का साधन है पर उसके गीतों के द्वारा सामाजिक स्थिति, रीति-रिवाज़ सभ्यता संस्कृति का झलक मिलती है। लोक संगीत में हमारी परम्परा की सारी गीतें भी जो कि अलग-अलग समय पर गायी जाती है जैसे कि जब कोई बालक जन्म लेता है तो उसके जन्म लेने के बाद हमारी परम्परा में ‘‘सोहर’ गाया जाता है, जो कि खुशी का प्रतीक माना जाता है। जब धान बोने का समय आता है तो उस समय के लिए भी बहुत सारी गीते औरतें गाया करतीं है और धान की रोपाई भी करती हैं। जब सावन का महीना आता है तो इस वर्षा ऋतु के मौसम में भी अनेक विधाओं के गीत इसके अन्तर्गत आते हैं। जब बसंत ऋतु का आगमन होता है तो उस समय में भी उनकी बहुत सारी गीतों का प्रचलन अपनी परम्पराओं में विद्यमान है। जब हमारी भारतीय परम्परा में शादी विवाह का आयोजन होता हैं तो उसमें भी संगीत का कार्यक्रम औरतों के द्वारा खुद ढोलक बजाकर गाया जाता है।

कुछ अवसर मुण्डन, कर्ण छेदन, ब्याह आदि संस्कारों के भी आते थे जब गाना और नाच हुआ करता था प्राचीन युग में जो उत्सव या मेले हुआ करते थे उनमें नाचना गाना ही उत्सव का मुख्य अंग होता था विचार करने पर मालूम होता है कि उत्सव 4 रसों के अन्तर्गत आ सकते हैं- शान्त, वीर, करूण और श्रृंगार यही 4 रस संगीत के द्वारा भली भांति प्रकट भी किये जा सकते हैं।

इस प्रकार हम देखें तो हमारी भारतीय परम्परा में हर समय के लिए हर विधा के गीतों का प्रचलन सामने आता है जिसको गाना हमारी परम्परा में नितान्त आवश्यक माना जाता है।

कव्वाली, गज़ल आदि में उर्दू भाषा का ही प्रयोग होता है पर लोक संगीत का यह प्रकार किसी वर्ग विशेष से सम्बन्धित नहीं है हिन्दू भी इसे उतने ही प्रेम से अपनाये हैं, जितना की मुसलमान। उर्दू साहित्य अब देवनागरी लिपि में भी सहज प्राप्त हो गया है। इससे यह आशा होती है कि भविष्य में भी इस दिशा की उन्नति होती जायेगी और स्तर क्रमशः ऊँचा होता जायेगा।

लोक संगीत अनेक रूपों में प्रचलित है। ग्राम और नगर में दोनों में ही इसकी महत्ता प्राप्त है और भिन्न-भिन्न रूपों में लोक संगीत विभिन्न स्थानों और विभिन्न भाषाओं पर भी पृथक-पृथक नाम व रूप धारण कर लेता है। लोक संगीत की धुनों का आकर्षण अपनी सरलता एवं स्वभाविकता के कारण इतना प्रभावोत्पादक होता है कि उसको उसको सुनते-सुनते श्रोता उसमें तन्मय हो जाता है तथा उसकी भावनाओं का असीम सागर स्वरों के कम्पन के साथ हिलोरे लेने लगता है ऐसा कौन होगा जोबिहार के बिरहा, उत्तर प्रदेश का बारहमासा, पंजाब के हीर राँझा आदि की धुनों को सुनकर पिघल न उठे।

काशी केन्द्रीत उत्तर प्रदेशीय राज्य से नाट्य संगीत की ‘चर्चरी’ का लोक धर्मानुसार परिवर्तन कबीरपन्थी पद संगीत ‘चांचर’ में हुआ, जो चैराहों पर गेय लोकगीत संगीत है, यद्यपि संदेश धार्मिक तौर पर कबीरपंथी है।

आधुनिक युग में लोक संगीत का सर्वाधिक प्रचलित रूप फिल्मी गीत, सुगम गीत या भजन ही हैं। इस संगीत में शब्द,लय और स्वर तीनों का स्वर बराबर रहता है।

लोक संगीत आम इन्सान को सुनने में सहज और शान्ति प्रिय होता है जिसमें गाने के बोल भी समझ में आ रहा है। जो संगीत एक आम इन्सान के मस्तिष्क को आराम पहुंचाने में भी सहायक मानी जाती है। भारत में विभिन्न पर्व और त्योहारों पर लोक जन द्वारा गाये एवं बजाये जाने वाला संगीत भी लोक संगीत है चाहे होली का त्यौहार हो या नवरात्री

का त्यौहार, विभिन्न त्योहारों पर लोक संगीत द्वारा पर्व की खुशीयाँ और भी बढ़ जाती है और त्यौहार की अनुभूति भी बढ़ जाती है।

इस प्रकार अनेक तर्क के माध्यम से कहा जा सकता है कि लोक संगीत हमारे दैनिक जीवन के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण तो है ही उसके साथ-साथ हमारी परम्परायें भी बरकरार रखने में सहायता प्रदान करते हैं।

निष्कर्ष

जिन चार वेदों में सनातन परंपरा की समस्त ज्ञान विद्यमान है लोक संगीत भी वेदों से ही उत्पन्न माना गया है। संगीत के प्राचीन ग्रंथों में लोक संगीत के विषय में विस्तृत चर्चा मिलती है। भारतीय परंपरा के विभिन्न संस्कारों में लोक संगीत का प्रचलन है। लोक संगीत में विभिन्न रसों का भी समावेश मिलता है। लोक संगीत का प्रभाव हमारे भारतीय शास्त्रीय संगीत पर भी अनुभव करने को मिलता है। लोक संगीत जन-साधारण की आतंरिक भावनाओं का प्रतिक है। यह देश संस्कृति का जीता जगता उदहारण है। किसी संस्कृतिक उन्नति की उस देश के लोक संगीत को देखकर चलता है। लोक संगीत सहज संगीत भी कहा जाता है। इसे सिखने के लिए किसी बंधन की आवश्यकता नहीं होती है। प्राचीन काल से ही मानव अपने मन के भावों को गाकर या बजाकर या नाच कर अभिव्यक्ति करता है। जिस प्रकार बिना प्राण के शरीर किसी काम का नहीं है उसी प्रकार लोक संगीत के बिना मानव जीवन नीरस है अतः हृदय के भावों को व्यक्त करने के लिए जब संगीत का सहारा लिया जाता है, तो वह संगीत लोक संगीत कहता है।

संन्दर्भ

1. मिश्रा, डॉ॰ लालमणि, भारतीय संगीत वाद्य, प्रकाशन भारतीय ज्ञानपीठ, तीसरा संस्करण-2005, पृ0सं0 -353-354
2. वही, पृ0सं0 - 353
3. वसु, गुप्ता डॉ॰ लिपिकादास, संगीतशास्त्र चिन्तन, कला प्रकाश, प्रथम संस्करण-2009, पृ0सं0 -146
4. बोराणा, रमेश, राजस्थान के लोक वाद्य, राजस्थान संगीत नाटक अकादमी, जोधपुर, सह प्रकाशन राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, प्रथम संस्करण-2006, पृ0सं0 -12
5. वसु, गुप्ता डॉ॰ लिपिकादास, संगीतशास्त्र चिन्तन, कला प्रकाश, प्रथम संस्करण-2009, पृ0सं0 -146-147
6. वही, पृ0सं0 -147
7. वही, पृ0सं0 -147
8. मिश्रा, डॉ॰ लालमणि, भारतीय संगीत वाद्य, प्रकाशन भारतीय ज्ञानपीठ, तीसरा संस्करण-2005, पृ0सं0 -358
9. वसु, गुप्ता डॉ॰ लिपिकादास, संगीतशास्त्र चिन्तन, कला प्रकाश, प्रथम संस्करण-2009, पृ0सं0 -151
10. वही, पृ0सं0 -152
11. जौहरी, सीमा, संगीतायन, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2003, पृ0सं0 -07
12. वसु, गुप्ता डॉ॰ लिपिकादास, संगीतशास्त्र चिन्तन, कला प्रकाश, प्रथम संस्करण-2009, पृ0सं0 -152
13. वही, पृ0सं0 -152
14. जौहरी, सीमा, संगीतायन, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2003, पृ0सं0 -07
15. पाठक, पं0 जगदीश नारायण, संगीत निबन्ध माला प्रकाशन, पाठक पब्लिकेशन इलाहाबाद, संस्करण-2004, पृ0सं0 -141
16. वही, पृ0सं0 -141

Swar Sindhu: National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music
ISSN 2320–7175 | Volume 09, Issue 02, July-December 2021
http://swarsindhu-pratibha-spandan-org
© The Author(s) 2021
A UGC CARE listed Journal

17. मिश्रा, डॉ. अरुण ,भारतीय कंठ संगीत और वाद्य संगीत गायन वादन सुमेल, कनिष्का पब्लिकेशन डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण-2008, पृ0सं0 -130
18. मिश्रा, डॉ० लालमणि, भारतीय संगीत वाद्य, प्रकाशन भारतीय ज्ञानपीठ, तीसरा संस्करण-2005, पृ0सं0 -354
19. पाठक, पं0 जगदीश नारायण, संगीत निबन्ध माला प्रकाशन, पाठक पब्लिकेशन इलाहाबाद, संस्करण-2004, पृ0सं0 -157
20. मिश्रा, डॉ० लालमणि, भारतीय संगीत वाद्य, प्रकाशन भारतीय ज्ञानपीठ, तीसरा संस्करण-2005, पृ0सं0 -358
21. सिंह, राजेन्द्र प्रसाद, भारतीय संगीत का समाजशास्त्रीय सन्दर्भ, नेशनल पब्लिकेशन हाऊस, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2004, पृ0सं0 -82
22. पाठक, पं0 जगदीश नारायण, संगीत निबन्ध माला प्रकाशन, पाठक पब्लिकेशन इलाहाबाद, संस्करण-2004, पृ0सं0 -157